पाठ 41 अध्याय 26 और 27

आज जब हम लैव्यव्यवस्था 26 को समाप्त कर रहे हैं, तो मैं आपको याद दिलाना चाहता हूँ कि लैव्यव्यवस्था के सभी पिछले अध्यायों के विपरीत, जहाँ कानून और अध्यादेश स्थापित किए गए थे, अध्याय 26 में कहा गया है, 'यहाँ बताया गया है कि यदि आप उन सभी कानूनों और आदेशों का पालन करते हैं, तो क्या होगा, और यहाँ बताया गया है कि यदि आप उन सभी कानूनों और आदेशों का पालन नहीं करते हैं, तो क्या होगा'। यह वह अध्याय है जो आशीर्वाद और श्राप या, हमारे आधुनिक भाषा में, पुरस्कार और दंड की रूपरेखा प्रस्तुत करता है। यह बहुत हद तक हमारे देश की वर्तमान नागरिक और आपराधिक कानूनों की प्रणाली की तरह संरचित है। सबसे पहले जब कोई नया कानून बनाया जाता है, तो कानून की प्रकृति (क्या करें और क्या न करें) को सावधानीपूर्वक विस्तृत किया जाता हैं। उसके बाद जब कोई उस कानून का उल्लंघन करता है, तो क्या होता है (दंड, दंड) चाहे वह जेल का समय हो या जुर्माना या कुछ और। बेशक एक चीज जो हमें हमारी आपराधिक कानून प्रणाली में कभी नहीं मिलेगी, वह है आशीर्वाद। हमारे आधुनिक आपराधिक न्यायशास्त्र प्रणाली में केवल दो संभावनाएँ हैंः (क) यदि आप कानून तोड़ते हैं तो आपके साथ कुछ बुरा घटित होगा, और (ख) यदि आप कानून नहीं तोड़ते हैं तो आपके साथ कुछ भी बुरा नहीं होगा।

इससे भी अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि यह अध्याय राष्ट्रीय आज्ञाकारिता और अवज्ञा के संदर्भ में बोल रहा है। यह पूरे इस्राएल के बारे में बोल रहा है। यह समझना बहुत महत्वपूर्ण है कि परमेश्वर हमें दिखाता है कि वह मानवता को देखता है और सदस्यता के 3 अलग–अलग क्षेत्रों में मानवता के साथ व्यवहार करता हैः व्यक्तियों के रूप में (एक की सदस्यता), एक परिवार या समुदाय के रूप में, और एक राष्ट्र के रूप में, और जब हम तोरह (या बाइबल में कहीं भी) पढ़ रहे हैं, तो हमें यह अवश्य निर्धारित करना चाहिए कि सदस्यता के इन तीन क्षेत्रों में से कौन सा कोई विशेष धर्मग्रंथ कार्य कर रहा है।

उदाहरण के लिएः यीशु में हमारा उद्धार व्यक्तिगत है। हमारा शाश्वत भविष्य, और यहोवा के साथ हमारा वर्तमान संबंध, व्यक्ति–दर–व्यक्ति निर्धारित होता है, न कि हमारे परिवार या समुदाय द्वारा निर्धारित किया जाता है, या हमारे राष्ट्र द्वारा तय किया जाता है। हमारे माता–पिता का विश्वास हमारे उद्धार को सुनिश्चित नहीं करता है और न ही उनका मूर्तिपूजकी हमें उद्धार से वंचित करता है। हम मुस्लिम वर्चस्व वाले देश में, मुस्लिम सरकार के अधीन, मुस्लिम परिवार में रह सकते हैं; लेकिन मसीहा में हमारा व्यक्तिगत विश्वास ही ईश्वर के साथ हमारे व्यक्तिगत संबंध को निर्धारित करता है।

दूसरी ओर, एक राष्ट्र के रूप में इस्राएल के साथ कई अवसरों पर जो कुछ हुआ, वह मुख्य रूप से उनके नेताओं (उनके राजाओं) के कार्यों के कारण था, जो उनके राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करते थे। एक राष्ट्र व्यक्तियों के संघ के अलावा कुछ नहीं है; लेकिन एक राष्ट्र (परिभाषा के अनुसार) सामूहिक तरीके से कार्य करता है और इस प्रकार उसके नेता होते हैं जो सामूहिकता का प्रतिनिधित्व करते हैं। नेता राष्ट्र के कई लोगों

द्वारा पसंद किए जाने वाले नेता नहीं हो सकते हैं, लेकिन फिर भी वे नेता हैं। उदाहरण के लिए, राजा दाऊद और सुलैमान (जो किसी भी तरह से परिपूर्ण नहीं थे) के कार्यों ने एक राष्ट्र के रूप में इस्राएल पर जबरदस्त आशीर्वाद लाया। प्रभु ने देखा कि उनके दिल उनकी ओर थे, उन्होंने परमेश्वर की सेवा करने की कोशिश की, और संतुलन में उन्होंने परमेश्वर पर विश्वास किया। उनके बाद क्या हुआ जब राजा यारोबाम ने सत्ता संभाली और अन्य देवताओं की पूजा करना शुरू कर दिया, और जब उसने अपने लोगों को गुमराह किया, तो अंततः अराजकता और गृहयुद्ध हुआ और इस्राएल दो राज्यों में विभाजित हो गया; जिनमें से एक पर अश्शूरियों ने विजय प्राप्त की और इसके कारण उस राज्य पर कब्जा करने वाले 10 इस्राएली कबीले बिखर गए, और उनकी इब्रानी पहचान समाप्त हो गई (कम से कम हाल ही तक)।

इसके अलावा हमें पवित्रशास्त्र में ऐसे उदाहरण भी मिलते हैं जहाँ व्यक्तिगत गोत्रों या परिवारों को अवज्ञा के लिए लंबे समय तक श्राप सहना पड़ा, हाम के वंशज इसका एक व्यापक उदाहरण है और दान के वंशज इसका दूसरा उदाहरण हैं। रूबेन के वंशजों ने इस्राएल के नेता होने का अपना अधिकार खो दिया, यह परमेश्वर की अवज्ञा का एक और मामला है और मैं इसके कई अन्य उदाहरणों के बारे में बात कर सकता हूँ। इसके विपरीत हम ऐसे परिवार पाएँगे जिन्हें यहोवा की आज्ञाकारिता के लिए दीर्घकालिक आशीर्वाद प्राप्त हुआः शेम के वंशज, अब्राहम से वादा की वंशावली के वंशज, कुछ हद तक यहूदा, और अन्य।

इसलिए महत्वपूर्ण ईश्वर सिद्धांत यह है कि कुछ आशीर्वाद और अभिश्राप ऐसे हैं जो व्यक्तियों पर लागू होते हैं, अन्य जो किसी के परिवार या समुदाय पर लागू होते हैं, और फिर भी अन्य जो किसी के पूरे राष्ट्र पर लागू होते हैं। स्वाभाविक रूप से सदस्यता के ये 3 क्षेत्र कुछ हद तक आपस में जुड़े हुए हैं। यदि बड़ी संख्या में व्यक्ति परमेश्वर का अनुसरण करते हैं तो संभावना है कि उनका परिवार, भी परमेश्वर का अनुसरण करेगा। और यदि बड़ी संख्या में व्यक्ति और उनके परिवार परमेश्वर का अनुसरण करते हैं तो संभावना है कि समुदाय और राष्ट्र भी ऐसा ही करेंगे। दुर्भाग्य से यह सिद्धांत विपरीत रूप से भी काम करता है।

इसलिए हम पाएँगे कि छुटकारा भी इसी तरह से काम करता है। यीशु ने जब पहली बार आकर हमें एक–एक करके छुटकारा दिलाया। अब इस पर मेरी बात ध्यान से सुनिएः जब इस्राएल को एक राष्ट्र के रूप में पुनः स्थापित किया जाएगा (जैसा कि अब हुआ है) तो दुनिया के राष्ट्रों (एक इकाई के रूप में) का न्याय या उद्धार एक ही विशेषता के आधार पर किया जाएगाः इस्राएल के साथ उस राष्ट्र का व्यवहार। मैं इसे फिर से कहना चाहता हूँः राष्ट्रीय मुक्ति व्यक्तियों की मुक्ति नहीं... इस पर आधारित है कि कोई विशेष **राष्ट्र** इस्राएल के साथ कैसा व्यवहार करता है। यह योएल, ओबद्याह, आमोस और प्रकाशितवाक्य में बहुत ही सीधी शिक्षाओं से लिया गया है। बेशक जिस राष्ट्र के व्यक्तिगत नागरिक प्रभु पर भरोसा नहीं करते हैं, उनके पास ऐसे नेता होने की संभावना नहीं है जो उस पर भरोसा करते हों; और इसलिए वह राष्ट्र इस्राएल में कोई विशेष मूल्य नहीं देखेगा। और जो राष्ट्र इस्राएल में कोई विशेष मूल्य नहीं देखता है, वह ऐसे निर्णय लेगा जो लोगों और भूमि से मिलकर बने अपने अलग राष्ट्र के बारे में परमेश्वर के निर्देशों के विपरीत होगे।

और, वैसे, क्योंकि एक राष्ट्र के लोग और नेता इस्राएल के परमेश्वर पर भरोसा करने और दूसरे "देवताओं" के प्रति सहिष्णुता का मिश्रण अपनाते हैं (चाहे वे "देवता" यह गलत धारणा हो कि कोई भी देवता परमेश्वर है, या भू–राजनीतिक वास्तविकताएँ परमेश्वर के नियमों और आदेशों से ज़्यादा मायने रखती है) उन राष्ट्रों को सिर्फ़ इसलिए कोई छूट नहीं दी जाती क्योंकि यहोवा उस मिश्रण में कहीं न कहीं है। यह कि एक राष्ट्र इस्राएल के खिलाफ़ उन भयानक कामों को एक साथ "प्रभु के नाम पर पुकारने" के साथ करेगा, उस राष्ट्र को न्याय के कटघरे में लाएगा, ठीक वैसे ही जैसे वे सिर्फ़ मोलेक या बाल की पूजा करते थे।

मैं आपको ये बातें इसलिए बता रहा हूँ क्योंकि ये लैव्यव्यवस्था 26 का संदर्भ है और क्योंकि हम (एक राष्ट्र के रूप में) ठीक उसी चीज़ के लिए अनुशासित होने की प्रक्रिया में हैं जिसके बारे में योएल, ओबद्याह, आमोस और अन्य लोगों ने हमें चेतावनी दी थीः इस्राएल की भूमि को विभाजित करना। यह कहना कि हम विश्व शांति के नाम पर विभाजन कर रहे हैं, ठीक उसी तरह है जैसे एक ही समय में यहोवा और बाल की पूजा करना; यह दोहरी मानसिकता है और इसमें विश्वास की कमी है। मैं आपको यह इसलिए भी बता रहा हूँ क्योंकि आप बहुत से चर्चा या सभास्थलों में इसे सुनने की संभावना नहीं है, लेकिन सोचिएः अब यह आपकी जिम्मेदारी है कि आप जाकर दूसरों को बताएँ!

आइये हम लैव्यव्यवस्था 26 के अंतिम भाग को पुनः पढ़ें।

पुनः पढ़ें लैव्यव्यवस्था, 26ः 32–अंत तक

यह मुझे चकित और हैरान करता है कि कैसे चर्च के सदस्य अपने लंबे इतिहास में यहोवा द्वारा इस्राएल पर दिए गए विभिन्न अनुशासनों और निर्णयों को आसानी से पहचान लेते हैं और सुना सकते हैं; और फिर पलटकर उन अनुशासनों को देखने से इनकार कर देते हैं जो हमारे ऊपर व्यक्तिगत और पारिवारिक, विश्वासियों के समुदाय और राष्ट्र के रूप में पड़ चुके हैं, और वर्तमान में पड़ रहे हैं, और पड़ेंगे। हम इस्लाम की दुनिया से उद्धरण के बाद उद्धरण भी देखते हैं कि कैसे इस्राएल की मुसीबतें, और हाल ही में अमेरिका की मौसम और आर्थिक आपदाएँ, उनके स्रोत में दिव्य हैं। और यहाँ पद 32 में हम देखते हैं कि ठीक उसी घटना की भविष्यवाणी की गई हैः यह बताता है कि इस्राएल के दुश्मन भी समझोंगे कि भूमि का विनाश और इब्रानी लोगों का धर्मत्याग उनके अपने ईश्वर द्वारा दैवीय दंड के रूप में आया है, जिसका अर्थ है कि इस्राएल ऐसा बिल्कुल नहीं सोचेगा।

फिर 34वें पद में सब्त के विषय को उठाया गया है। दिलचस्प है। यह केवल पिछले अध्याय में ही था कि परमेश्वर ने सब्त के वर्षों के लिए नियम निर्धारित किए (7 वर्षों का चक्र जिसमें पहले 6 नियमित वर्ष और 7वाँ सब्त का वर्ष) और फिर 50 वर्षों का चक्र जिसमें 7 वर्षों के 7 चक्र हैं (और अगला वर्ष जुबली है जो अपने आप में सबसे विशेष सब्त का वर्ष है)। इसलिए यह पद इस बात का **अनुमान** लगाता है कि इस्राएल सब्त के वर्षों के नियम का पालन नहीं करेगा। कि इस्राएल 6 वर्षों तक भूमि का उपयोग नहीं करेगा और फिर उसे 1

वर्ष का विश्राम देगा। कि इस्राएल जुबली के नियमों का पालन नहीं करेगा और हर 50 वर्ष में भूमि को लगातार 2 वर्ष का विश्राम देगा। और उन सब्त और जुबली का पालन करने से यह जिद्दी इनकार यहोवा द्वारा अपने लोगों पर अनुशासन का कठोर हाथ रखने के कारण का एक हिस्सा हैः कम से कम आंशिक रूप से यह भूमि के लाभ के लिए है।

यहाँ स्पष्ट व्याख्या यह है कि भूमि उजाड़ हो जाएगी और उसका उपयोग नहीं किया जाएगा (क्योंकि इस्राएल को निर्वासित कर दिया गया है) इसका कारण उन सभी सब्तों की भरपाई करना है जो छूट गए थे। दूसरे शब्दों में, जो ऐसा लगता है कि यह भूमि पर ईश्वर का अभिश्राप है (इसे उजाड़ना) वास्तव में भूमि के लिए एक प्रकार का आशीर्वाद है। यह, एक निश्चित तरीके से, भूमि को फिर से जीवंत करने का एक साधन है। पद 34 के अंत में वाक्यांश में इस्तेमाल किया गया इब्रानी शब्द जहाँ यह कहता हैः **" और भूमि को उसके सब्तों का भुगतान किया जाएगा." रित्सा** है। यह एक मूल शब्द से आता है जिसका अर्थ है प्रायश्चित करना, या भरपाई करना।

मैंने कई मौकों पर कहा है कि ईश्वर के नियम आते–जाते नहीं रहते। वे मनुष्यों के नियमों की तरह नहीं हैं जो समय के साथ या मतदाताओं या हमारे नेताओं की सनक के साथ बदल जाते हैं। बल्कि ईश्वर के नियम ब्रह्मांड का ढाँचा हैं। जब यहोवा ने सब्त वर्ष और जयंती नियम बनाए तो ऐसा इसलिए था क्योंकि उनसे संबंधित नियम ब्रह्मांड के संचालन का तरीका हैं। उदाहरणः हमारे पास ऐसे नागरिक कानून हैं जो कहते हैं कि कुछ कर्मचारी, जब उच्च पदों पर काम करते हैं, तो उन्हें सुरक्षा बेल्ट पहनना चाहिए। क्योंकि यदि वे इस कानून का पालन नहीं करते हैं तो वे गिरकर गंभीर रूप से घायल हो सकते हैं या उनकी मृत्यु भी हो सकती है। अब क्या होगा अगर गुरुत्वाकर्षण न हो? क्या होगा अगर गुरुत्वाकर्षण न होने की वजह से पृथ्वी ग्रह के निवासी बस इधर–उधर घूमते रहें जैसे हम अंतरिक्ष स्टेशन पर अंतरिक्ष यात्रियों को करते हुए देखते हैं। बाह्य अंतरिक्ष में रहने वाले एक अंतरिक्ष यात्री के लिए "गिरना" शब्द का कोई अर्थ नहीं होता है, है ना? ऊँचे स्थानों पर काम करने वाले कर्मचारियों के लिए सुरक्षा बेल्ट के बारे में हमारा कानून परमेश्वर द्वारा स्थापित एक और अधिक शक्तिशाली कानून का जवाब हैः गुरुत्वाकर्षण का नियम। एक ऐसा कानून जो ब्रह्मांड का हिस्सा है; एक ऐसा कानून जिसे कोई भी इंसान तोड़ या खत्म नहीं कर सकता।

जब प्रभु कोई नियम स्थापित करते हैं, तो यह गुरुत्वाकर्षण की तरह होता हैः भले ही हम इसे देख न सकें, यह मौजूद है, यह हमारे जीवन के अधिकांश पहलुओं को प्रभावित करता है, और किसी न किसी तरह से इसका हिसाब रखना ही पड़ता है। गुरुत्वाकर्षण के नियम की अनदेखी करना मौत को आमंत्रित करना है। जब परमेश्वर ने भूमि के लाभ के लिए सब्त के वर्षों को निर्धारित किया तो ऐसा इसलिए था क्योंकि भूमि को उन सब्त के वर्षों की आवश्यकता थी। भूमि कैसे संचालित होती थी और अपनी उपज कैसे देती थी, यह उन सब्त के वर्षों पर निर्भर करता था। यदि कोई व्यक्ति जो ऊँचे स्थान परं काम करता है, वह अपनी सुरक्षा बेल्ट पहनता है, तो वह गुरुत्वाकर्षण के खतरों के भीतर काम कर सकता है और गुरुत्वाकर्षण उस पर हावी नहीं

होगा। यदि वह ऐसा नहीं करता है, तो अंततः वह ऐसा करेगा। यदि भूमि को उसके सब्त मिलते हैं तो वह उसी तरह काम करती है जैसे उसे डिज़ाइन किया गया है और लोगों के लिए बहुत अधिक प्रचुरता प्रदान करती है। यदि भूमि को उसके सब्त नहीं मिलते हैं तो वह थक जाती है। भूमि को ठीक उतने ही सब्त की आवश्यकता है जितने परमेश्वर ने निर्धारित किए हैं। न एक भी अधिक और न ही एक भी कम। और प्रभु यह सुनिश्चित करेंगे कि किसी न किसी तरह से उसे सब्त मिले। यही ईश्वर–सिद्धांत की प्रकृति है जिसे लैव्यव्यवस्था 26 में यहाँ प्रस्तुत किया गया है।

तो क्या परमेश्वर के नियमों की अनदेखी करने का परिणाम आखिरकार एक राष्ट्र के रूप में इस्राएल को भुगतना पड़ा? निश्चित रूप से भुगतना पड़ा। यहेजकेल 4:4–6 में, मूसा को तोरह दिए जाने के लगभग 9 शताब्दियों बाद, परमेश्वर ने अचानक यहेजकेल को 390 दिनों के लिए अपने बाएँ करवट लेटने का निर्देश दिया, एप्रैम–इस्राएल के अधर्म के प्रत्येक वर्ष के लिए एक दिन, फिर अपने दाहिने करवट पर 40 दिन, यहूदा (उत्तरी राज्य और दक्षिणी राज्य इस्राएल के दो घराने) के अधर्म के प्रत्येक वर्ष के लिए एक दिन। यह कुल 430 दिन/वर्ष है जो इस्राएल को उनके आने वाले दण्ड का संकेत है। इस समय तक बेबीलोन का राजा नबूकदनेस्सर, निर्वासन की पहली तीन किस्तों (दानिय्येल सहित) को पहले ही बेबीलोन ले जा चुका था, पहली बार 606 ईसा पूर्व में हुआ था।

वर्ष 588 ईसा पूर्व तक इस्राएल के तीसरे और अंतिम लोगों को बेबीलोन ले जाया गया, मंदिर नष्ट हो गया, और भूमि लगभग उजाड़ पड़ी थी। इस विवरण में 1 इतिहास 36:21 यह आश्चर्यजनक कथन करता है; कि एप्रैम–इस्राएल, फिर यहूदा, को निर्वासित करने का उद्देश्य था, **"यिर्मयाह के मुख से यहोवा के वचन को पूरा करना जब तक कि देश ने अपने सब्त का आनंद नहीं लियाः जब तक वह उजाड़ रहा, उसने सब्त का पालन किया, यानी सत्तर और दस (70) वर्ष पूरे हुए।"** यहाँ उल्लेखनीय बात यह है कि 430 वर्षों में ठीक 70 सब्त वर्ष शामिल हैं। परमेश्वर के लेखा–जोखा के अनुसार, भूमि को ठीक 70 सब्त वर्षों से वंचित किया गया था (क्योंकि इस्राएलियों ने आवश्यक सब्त वर्षों से संबंधित उन कानूनों को अभी– अभी उड़ाया था) और इसलिए भूमि को उसके सब्त का भुगतान करने का समय आ गया था। यह अपरिहार्य था कि ऐसा होना ही था क्योंकि इस्राएल की भूमि को जिस सब्त वर्ष की आवश्यकता थी, वह ब्रह्मांड का नियम है, गुरुत्वाकर्षण की तरह। परमेश्वर के वचन का हर "अंक और स्ट्रोक" उनके निर्वासन के सत्तर कड़वे वर्षों में पूरा हुआ; भूमि को 70 वर्षों का विश्राम मिलना था, उसे 70 वर्ष का विश्राम मिला; लेकिन इस्राएलियों ने उन सभी वर्षों के लिए भारी कीमत चुकाई जो उन्होंने छोड़े थे। हम परमेश्वर के नियमों का उल्लंघन करने के परिणामों को कुछ समय के लिए टाल सकते हैं, लेकिन यह हमें पकड़ लेगा क्योंकि यह ब्रह्मांड के संचालन के तरीके में बस अंतर्निहित है।

लैव्यव्यवस्था 26 में आगे जो लिखा है वह इस्राएलियों द्वारा सदियों तक बंदी बनाये जाने का वर्णन है। और मूल रूप से, इन समयों के दौरान इस्राएल के लोगों की स्थिति इस प्रकार हैः

1) वे हृदय से कायर हो जायेंगे। कायरता के लिए यहाँ प्रयुक्त शब्द इब्रानी में **मोरेख** है।

और इसका शाब्दिक अर्थ है, "नरम होना"। इसी शब्द का प्रयोग व्यवस्थाविवरण में वर्णन करने के लिए किया गया है। जो लोग सैन्य सेवा के लिए योग्य नहीं हैं। क्योंकि वे कायर हैं। यह कितना बड़ा अभियोग है! इसमें कहा गया है कि इस्राएलियों को दूसरे देशों में ले जाया जाएगा; वे झुकेंगे और जो कुछ भी उन्हें कहा जाएगा, वह करेंगे क्योंकि उनके पास कोई आंतरिक दृढ़ता नहीं है। उनके पास आंतरिक शक्ति क्यों नहीं है? क्योंकि यहोवा ने उनके दिलों में मौजूद साहस को **ले लिया** और उनकी अवज्ञा के लिए दंड के रूप में इसे एक विनम्र प्रकार के भय से बदल दिया।

2) वे एक दूसरे से टकराएँगे जैसे कि कोई उनका पीछा कर रहा हो। इसका मतलब यह है कि कोई वास्तव में उनका पीछा नहीं कर रहा है। यह विचार अराजकता, व्यामोह और अव्यवस्था का है। कुछ समय पहले इराक में हुए उस भयानक दिन की कल्पना कीजिए जब पुल पार कर रहे लोगों की भीड़ के बीच किसी ने चिल्लाकर कहा था "बम!" हालाँकि, वास्तव में, वहाँ कोई बम नहीं था। लोग एक दूसरे को धक्का देने लगे और एक दूसरे से टकराने लगे। मानवता का दबाव इतना भयानक था कि कंक्रीट और स्टील की रेलिंग टूट गई और सैकड़ों लोग 60 फीट नीचे यूफ्रेट्स में गिर गए। इसके अलावा कुछ लोग इस कुचले जाने से दम घुटने से मर गए तथा कई लोग सचमुच कुचलकर मर गए। जब सब कुछ खत्म हुआ तो करीब 700 लोग मारे गए; लेकिन जैसा कि पता चला कि कोई खतरा नहीं था, यह सब कल्पना मात्र था। इस अंश का यही अर्थ है।

3) इस्राएल किसी हमले में टिक नहीं पाएगा। वे अपने दुश्मनों के सामने पीछे हट जाएँगे। निर्वासन में इस्राएल का इतिहास लड़ाई के बजाय तुष्टीकरण की, एक अकथनीय प्रवृत्ति है। यह एक विश्वास है कि उनके पास कोई उम्मीद नहीं है, इसलिए परेशान क्यों हों। यह एक विश्वास है कि उनके पास लड़ने और जीतने की क्षमता नहीं है।

4) पहले 3 गुणों के परिणामस्वरूप वे जिस भी विदेशी देश में जाएँगे, वहीं मर जाएँगे। आप जानते हैं कि घर पर अपने बिस्तर पर मरना एक बात है। कुछ लोग, जब उन्हें लगता है कि मृत्यु निकट है, तो वे उस क्षेत्र में वापस जाना चाहते हैं जहाँ वे पैदा हुए और पले–बढ़े; परिचितता एक तरह का आराम देती है। लेकिन जब आप किसी विदेशी जगह पर होते हैं जहाँ आप स्वाभाविक रूप से नहीं होते हैं और उस विदेशी जगह के स्वाभाविक लोग भी महसूस करते हैं कि आप वहाँ के नहीं हैं तो यह एक अलग मामला है। शायद, यह एक सैनिक का सबसे बड़ा डर है, विदेशी भूमि पर मरना। यही वह सटीक खतरा है जो परमेश्वर अपने लोगों के सामने रख रहे हैं। कि वे एक विदेशी भूमि पर मरेंगे। कि उनके अंतिम क्षण शांतिपूर्ण नहीं होंगे, बल्कि उत्तेजना और चिंता से भरे होंगे।

5) जो लोग उन विदेशी जगहों पर नहीं मरते हैं जहाँ वे खुद को पाएँगे, वे दिल से दुखी होंगे। इस वाक्यांश का अंग्रेजी अर्थ दुख की स्थिति है। लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। यहाँ इस्तेमाल किया गया इब्रानी शब्द, **यिमक्कू,** का शाब्दिक अर्थ है "वे पिघल जाएँगे"। हम जकर्याह और यहेजकेल में सुनेंगे कि परमेश्वर के लोगों की आँखें उनकी आँखों की कोटर में पिघल रही हैं और अपराध के कारण नष्ट हो रही हैं। दोनों मामलों में विचार शाब्दिक रूप से पिघलने का नहीं है। कुछ लोगों ने यहेजकेल को विशेष रूप से परमाणु बम हमले के रूप में चित्रित करने की कोशिश की है। बल्कि यह एक इब्रानी मुहावरा है; और इसका अर्थ है भय की एक गहरी और परेशान करने वाली भावना जो दूर नहीं होगी।

6) यहूदी लोगों के लिए विनाश और भय की सामान्य भावना के अलावा, वे अपने पूर्वजों के अधर्म पर भी विलाप करेंगे। शायद यह राष्ट्रीय न्याय के प्राथमिक प्रभाव का सबसे अच्छा उदाहरण देता है, जिस पर यहाँ चर्चा की जा रही है। वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वे पिछले पिढ़ियों के साथ–साथ अपनी पीढ़ी के सामूहिक पापों से भी पीड़ित हैं। और बेशक सवाल यह है कि कोई व्यक्ति ईश्वर के ऐसे अभिशाप से कैसे बच सकता है?

7) फिर एक अजीब तरीके से ये सभी अंधकारमय और उदास भावनाएँ और परिस्थितियाँ उसी चीज़ को जन्म देती हैं जो मेरे द्वारा पूछे गए प्रश्न का उत्तर देती हैः कोई इस स्थिति से कैसे बच सकता है? और इसका उत्तर पद 40 में दिया गया हैः <u>उन्हें अपने और अपने पिताओं के अधर्म को स्वीकार करना चाहिए।</u> क्या यह बिल्कुल वही नहीं है जो हमें नए नियम में करने के लिए प्रोत्साहित किया गया है? कबूल करना और बेशक पश्चाताप करना... जो इस आयत में निहित है। और, उन्हें क्या कबूल करना है? कि वे और उनसे पहले के लोग... यानी, उनके राष्ट्र, इस्राएल के लोग... सामूहिक रूप से यहोवा के प्रति शत्रुतापूर्ण थे। उन्होंने परम पावन के विरुद्ध अपराध किया। फिर से, इसे एकल व्यक्तियों के रूप में नहीं बल्कि व्यक्तियों के समूह, एक राष्ट्र के रूप में देखा जाना चाहिए। यहाँ प्रदर्शित किया जा रहा पूरा सिद्धांत यह है कि जब राष्ट्रीय न्याय हो रहा होता है तो उस राष्ट्र का हर व्यक्ति बोझ उठाता है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आप एक व्यक्ति के रूप में उन चीजों से सहमत नहीं थे जो आपके राष्ट्र या उसके नेताओं ने ईश्वर के प्रति शत्रुता में की थीं। यह बार–बार उन भविष्यवक्ताओं के साथ प्रदर्शित होता है जो प्रभु के सामने धर्मी थे, जिन्होंने अपने राष्ट्र के अधर्म में भाग लेने से इनकार कर दिया, लेकिन जिन्होंने उन लोगों के साथ दुख उठाया जो धर्मी नहीं थे। राष्ट्रीय न्याय में यहोवा द्वारा धर्मी लोगों से पूरी तरह अपेक्षा की जाती है कि वे उस राष्ट्र के • पापों को स्वीकार करें जिससे हम जुड़े हुए हैं, जैसे कि ये हम ही थे जिन्होंने सीधे तौर पर ये अपराध किए थे।

आस्था के इतिहास की सबसे विडंबनापूर्ण विचित्रताओं में से एक (कम से कम मुझे तो ऐसा ही लगता है) हमारे पास एक चर्च है जो ईमानदारी से महसूस करता है कि आध्यात्मिक स्तर पर जो कुछ भी वास्तव में मायने रखता है वह व्यक्ति है। कि ईश्वर की सभी मुक्तिदायी कृपा और भयंकर क्रोध व्यक्तियों के बारे में है। इसके विपरीत, हमारे पास एक यहूदी धर्म है जो ईमानदारी से महसूस करता है कि आध्यात्मिक स्तर पर जो

कुछ भी वास्तव में मायने रखता है वह समग्र रूप से राष्ट्र है कि ईश्वर की सभी मुक्तिदायी कृपा और भयंकर क्रोध राष्ट्रीय सामूहिकता के बारे में है। और दोनों ही गलत हैं और मुझे उम्मीद है कि आप इसे देख रहे होंगे। यही कारण है कि औसत आधुनिक गैर–यहूदी विश्वासी को अपने राष्ट्र की ओर से उन चीज़ों के लिए क्षमा माँगना बहुत अजीब लगता है जो उसने सीधे तौर पर नहीं की हैं। वास्तव में अपने राष्ट्र के पापपूर्ण कार्यों के लिए प्रभु से क्षमा माँगने की व्यक्तिगत ज़िम्मेदारी लेना। यह प्रार्थना करके नहीं कि, "हे परमेश्वर, उन लोगों ने जो किया उसे क्षमा करें"। बल्कि, "हे परमेश्वर, **मुझे** क्षमा करें क्योंकि मैं उस राष्ट्र का हिस्सा हूँ जिसने आपके खिलाफ़ ये काम किए हैं"। क्या आपको अंतर नज़र आता है? और धार्मिक यहूदियों को किसी व्यक्ति के लिए मुक्ति की प्रार्थना करना भी उतना ही अजीब लगता है। अगर पूरा राष्ट्र नष्ट हो जाए तो एक व्यक्ति के उद्धार से क्या फायदा? आखिरकार अगर पूरा राष्ट्र उद्धार पाता है तो परिभाषा के अनुसार उस राष्ट्र का हर व्यक्ति उद्धार पाता है। यही तर्क है।

8) अब जब इस्राएल परमेश्वर के प्रति अपनी शत्रुता को पहचानता है और उसे स्वीकार करता है, तब. .... अपने निर्वासन के बीच में उनके हृदय नम्र हो जाएँगे। दूसरे शब्दों में वे अंततः उस गड्ढे की तलहटी में पहुँच गए हैं; उनके पास बहाने खत्म हो गए हैं, उन्हें एहसास हो गया है कि उनके पास कोई उम्मीद नहीं है और वे अपनी खुद की बनाई हुई मुश्किल से खुद को नहीं निकाल सकते। जब वे अपने घमंड से मुक्त हो जाएँगे, तब यहोवा अब्राहम, इसहाक और याकूब के साथ अपनी वाचाओं को याद करेगा। यहाँ तक कि यह भी कहा गया है कि प्रभु देश को याद रखेगा; अर्थात् वह स्मरण करेगा कि बहुत समय पहले उसने इस्राएल को कनान देश का स्थायी पट्टाधारक बनाया था।

अब हम उस हिस्से पर आते हैं जिस पर हमें पश्चाताप करना चाहिए; एक हिस्सा जिसे हममें से अधिकांश ने एक समय में अस्वीकार कर दिया था और उम्मीद है कि अब ऐसा नहीं होगा। एक हिस्सा जिसे हमारे समुदाय का एक बड़ा हिस्सा... विश्वासियों का समुदाय अभी भी आश्रय देता है। यहोवा इस्राएल के राष्ट्र से आयत 44 में कहता है: **लैव्यव्यवस्था 26:44 'फिर भी, जब वे अपने शत्रुओं के देश में होंगे, <u>तो मैं उन्हें अस्वीकार नहीं करूँगा</u>, न ही में उनसे इतना घृणा करूँगा कि उन्हें नष्ट कर दूँ, उनके साथ अपनी वाचा को तोड़ दूँ; क्योंकि मैं उनका परमेश्वर यहोवा हूँ।**

बल्कि, अब्राहम, इसहाक और याकूब के साथ की गई वाचाओं के कारण, यहोवा दया करेगा और इस्राएल के साथ की गई वाचाएँ बरकरार रहेंगी।

यहोवा ने इस्राएल को अस्वीकार नहीं किया। उसने उन्हें कभी भी **<u>स्थायी रूप से</u>** निर्वासित नहीं किया और न ही नष्ट होने दिया। इसके अलावा उसने उन्हें प्रतिस्थापित नहीं किया। निर्वासन, राष्ट्रीय अनुशासन का एक रूप था, राष्ट्रीय विनाश नहीं। इसका उद्देश्य इस्राएल को स्वीकारोक्ति और पश्चाताप के स्थान पर लाना था ताकि वे अनन्त न्याय से बच सकें, और इसके बजाय अंततः अपनी भूमि पर बहाल हो सकें।

जब हम व्यक्तिगत रूप से प्रभु द्वारा अनुशासित और दंडित किए जाते हैं, तो इसका उद्देश्य हमें सीधे मार्ग पर वापस लाना होता है, ताकि हम न्याय से बच सकें। जब हम एक राष्ट्र के रूप में अनुशासित होते हैं, तो इसका उद्देश्य हमें राष्ट्रीय स्तर पर सीधे मार्ग पर वापस लाना होता है, ताकि हम विनाशकारी न्याय से बच सकें। लेकिन आज हमने इस दिशा में जो कदम उठाए हैं, उन पर ध्यान दें। जब तक हम यह नहीं पहचान लेते कि हमारे साथ जो विपत्तियाँ आई हैं, वे ईश्वर के न्याय के हाथ हैं, और जब तक हम अपने व्यक्तिगत हिस्से को नहीं पहचान लेते, जो हमने उनके प्रति राष्ट्रीय शत्रुता (अपनी राष्ट्रीय अवज्ञा में) प्रदर्शित की है, और जब तक हम इसे स्वीकार नहीं करते और इसका पश्चाताप नहीं करते और उनके सामने विनम्र नहीं होते, तब तक हम उनके अनुशासन के हाथ के नीचे तब तक रहेंगे, जब तक हम पश्चाताप नहीं करते या परमेश्वर न करे... जब तक कि प्रभु का दिन न आ जाए, जब वे दुनिया का स्थायी रूप से न्याय करने आएँगे।

प्रकाशितवाक्य में हम जिन भयावह घटनाओं के बारे में पढ़ते हैं, वे अनुशासन के बारे में नहीं हैं। प्रकाशितवाक्य में अनुशासन का समय समाप्त हो चुका है। अब उन लोगों के लिए न्याय का समय आता है जिन्होंने उसके अनुशासन और परिवर्तन को स्वीकार करने से इनकार कर दिया। वैसे, प्रकाशितवाक्य की उन अकल्पनीय घटनाओं में से अधिकांश के लिए मूल सेटिंग और संदर्भ जो आधुनिक इवेंजेलिकल चर्च में इस बात पर जोर देने के साथ इतने लोकप्रिय हो गए हैं कि पुराना नियम अप्रासंगिक है या समाप्त कर दिया गया है, वे वाचा के श्रापों में निहित हैं। लैव्यव्यवस्था 26 और व्यवस्थाविवरण 281

आइये अब हम लैव्यव्यवस्था के अंतिम अध्याय, अध्याय 27 की ओर बढ़ें।

यह दिलचस्प है कि लैव्यव्यवस्था की पुस्तक में जिन अंतिम कुछ मामलों के बारे में बात की गई है, वे पवित्र स्थान के वित्तपोषण के इर्द–गिर्द घूमते हैं। बाइबल के दृष्टिकोण से पवित्र स्थान का संचालन जो इस समय इस्राएल के इतिहास में एक पोर्टेबल तम्बू था, जंगल का तम्बू... लेकिन बाद में एक निश्चित इमारत, मंदिर बन गया... कई स्रोतों से वित्त पोषित किया जा सकता था। और यह अध्याय पवित्र स्थान के वित्तपोषण की कई प्रमुख श्रेणियों से संबंधित हैः चाँदी और जानवरों की प्रतिज्ञा, घरों और भूमि जैसी वास्तविक संपत्ति का अभिषेक, ज्येष्ठ पशुओं और फसलों के पहले फलों का दान, और संपत्ति और दशमांश का दान।

इस अध्याय को पढ़ते हुए हम पाते हैं कि, सामान्य तौर पर, इसका उद्देश्य पवित्र स्थान का संचालन करने वाले पुरोहित वर्ग के लिए चाँदी प्राप्त करना था ताकि रखरखाव और संचालन के लिए जो कुछ भी आवश्यक हो उसे **खरीदा** जा सके। इसलिए हम सापेक्ष मूल्यों की एक अनुसूची देखेंगे जिसमें भूमि और जानवरों की विभिन्न प्रतिज्ञाएँ... यहाँ तक कि लोगों की भी चाँदी के बदले में विनिमय किया जा सकता है। यानी विचार यह था कि पवित्र स्थान पर इस प्रकार भेंट देने की प्रतिज्ञा की जाएगी और फिर देने वाला व्यक्ति वापस आकर उसे छुड़ाएगा वापस खरीदेगा। जो कुछ भी उसने दिया था। इन चीजों को छुड़ाने में कितना खर्च आएगा? पहले दी गई और फिर छुड़ाई गई वस्तुओं का उचित मूल्य क्या था? यह उन मामलों में से एक है, जिनसे यह अध्याय निपटता है।

तो मैं स्पष्ट कर दूँ: अध्याय 27 में निहित नियम और विनियम इस तरह से बनाए गए हैं कि यह एक आदर्श बन गया है कि अभयारण्य को अपने संचालन के लिए जो कुछ भी प्राप्त हुआ, उसका अधिकांश हिस्सा चाँदी था। कुछ ऐसा जिसका आदान–प्रदान करना आसान था। न कि जानवर और खेत की फसलें।

अध्याय 27 को पढ़ने से पहले मैं कुछ बातें बताना चाहता हूँ: सबसे पहले, क्या यह सामान्य तरीका नहीं है कि हम अपने धन को पवित्र स्थान को दान करें? जहाँ हम पूजा करते हैं। आराधनालय या चर्च... वहाँ आम तौर पर इसी तरह से धन दिया जाता है? चर्च और आराधनालय संस्था को दिए जाने वाले सभी दान को एक साथ जोड़ देते हैं और इसे दशमांश या भेंट कहते हैं; लेकिन लैव्यव्यवस्था संस्था को दिए जाने वाले धन को और अधिक विस्तृत श्रेणियों में विभाजित करता है, जिनमें से दशमांश एक है।

दूसरा, ताकि आप अगले सप्ताह इसे पढ़ते समय इसके बारे में सोच सकें, पहचानें कि दशमांश के विषय पर, वास्तव में, नए नियम में किसी भी विस्तार से चर्चा नहीं की गई है। इसका केवल हल्के–फुल्के ढंग से उल्लेख किया गया है और नया नियम में "दशमांश" शब्द का इस्तेमाल जितनी बार किया गया है, आप उसे एक हाथ की उंगलियों पर गिन सकते हैं। और भी अधिक बार जब इसका इस्तेमाल किया जाता है, तो एक बार को छोड़कर, यह तोरह सिद्धांत के बारे में कोई बात कहने या कुलपतियों में से किसी एक की योग्यता के बारे में बोलने के संदर्भ में होता है।

मुद्दा यह है किः नये नियम में दशमांश देने का कोई आदेश नहीं दिया गया है।. कुछ भी नहीं! और जो भी संकेत किया गया है वह पुराने नियम के एक उद्धरण के संदर्भ में है। और कई विश्वासियों ने सीधे नया नियम आदेश की कमी का यह अर्थ लिया है कि ईसाइयों को दशमांश देने की कोई आवश्यकता नहीं है और इस प्रकार चर्च के काम का समर्थन करना है। बेशक मैं किसी भी **चर्च** के बारे में नहीं सोच सकता जो इस धारणा को स्वीकार करेगा। अब मैं विषय से भटककर दशमांश देने के बारे में गहराई से चर्चा नहीं करना चाहता, लेकिन मैं आपके लिए विचार करने के लिए कुछ विचार रखना चाहता हूँ। और मैं आपको मूल बात बताकर शुरू करूँगाः संस्था का समर्थन करने के लिए दशमांश देना और देना नया नियम में माना गया था। दूसरे शब्दों में नया नियम को यह नहीं लिया जाना चाहिए (जैसा कि कुछ लोग करते हैं) कि यदि यीशु ने सीधे आदेश नहीं दिया तो हमें ऐसा करने की आवश्यकता नहीं है। तोरह जिसका उन्होंने पालन किया और मत्ती 5 में दूसरों को भी ऐसा करने के लिए कहा, उसे समाप्त नहीं किया गया था; और यीशुआ ने कहा कि जब तक स्वर्ग और पृथ्वी गायब नहीं हो जाते, तब तक हर अक्षर और हर बिंदु बरकरार रहेगा। परमेश्वर के आदेश पहले से ही दशमांश देने के सिद्धांत और साथ ही इस्राएल के परमेश्वर के शिष्यों को कई अन्य सिद्धांतों को सिखाने के लिए स्थापित किए गए थे।

नया नियम बाइबल का वह भाग नहीं है जिसमें पिछले भाग की हर बात..... व्यवस्था और भविष्यद्वक्ताओं. .... को दोहराया जाना चाहिए ताकि उसे मान्य किया जा सके। यह चर्च की सबसे अधिक जिज्ञासु.... और स्पष्ट रूप से खुलासा करने वाली परंपराओं में से एक है जो सिखाती है कि दशमांश देने की आवश्यकता

सीधे बाइबल के उस भाग से आती है जिसे अन्यथा अप्रचलित और पूरी तरह से नकारात्मक माना जाता है। जैसा कि मैंने दान के विषय पर सुने गए कई उपदेशों को याद किया, दुर्लभ मामले में जब किसी नए नियम के अंश को 'वैध दशमांश के लिए उद्धृत किया जाता है तो यह हमेशा लूका की पुस्तक; से ही होता है; **अध्याय 11 बनाम 42, जो यह कहता हैः लूका 11:42 "परन्तु हे फरीसियों, तुम पर हाय! तुम पुदीने और सुदाब और सब प्रकार की सब जड़ी– बूटियों का दसवां अंश देते हो, परन्तु न्याय और परमेश्वर के प्रेम को तुच्छ जानते हो; परन्तु इन्हें तो तुम्हें करना चाहिए था, और उन्हें भी न भूलना चाहिए था।**

और विचार यह है कि जबकि दशमांश देना अभी भी प्रभावी है, न्याय और परमेश्वर का प्रेम दशमांश देने का कारण होना चाहिए यह निश्चित रूप से केवल आदेशों और कानूनों के अनुसार नहीं किया जाना चाहिए... "कानूनी रूप से"। सही है?

खैर, आइये हम मत्ती की पुस्तक में इसी उद्धरण का उपयोग करने वाले दूसरे_सुसमाचार पर एक नजर डालें... क्योंकि इस आयत को आमतौर पर टाला जाता हैः मत्ती 23:23 "हे कपटी शास्त्रियों और फरीसियों, तुम पर हाय! तुम पुदीने और सौंफ और जीरे का दसवां अंश देते हो, परन्तु तुमने व्यवस्था की गम्भीर बातों को अर्थात् न्याय, और दया, और विश्वास को छोड़ दिया है; परन्तु इन्हें ही करना चाहिए था, और उन्हें भी न छोड़ते।

ओह, ओह। यहाँ हम यीशु को सीधे तौर पर बताते हुए पाते हैं कि न केवल दशमांश देना **स्पष्ट** रूप से कानून का प्रावधान है, बल्कि न्याय और दया और विश्वासयोग्यता भी " **कानून के** भारी प्रावधान हैं"। और दूसरे शब्दों में हमारे पास कानून की पूरी पुष्टि है ("तुम्हें ये काम करने चाहिए, और तुम्हें दूसरे काम भी करने चाहिए") जो कानून के अध्यादेशों का संदर्भ देते हैं। तो अब हम देखते हैं कि यह एक ये वे चीजें हैं जिन्हें आपको दूसरों की उपेक्षा किए बिना **करना चाहिए था** "। विशेष रूप से लोकप्रिय पद क्यों नहीं है और, फिर, यहाँ से आगे अधिकांश धर्मोपदेशों में दशमांश के विषय में सारी शिक्षा आम तौर पर पुराने नियम से ली जाती है।

यह सिर्फ़ एक अच्छा उदाहरण है जो मैं आपको हमारे साथ बिताए वर्षों में सिखाता आया हूँ: यह माना जाता है कि नए नियम के पाठक को पहले से ही व्यवस्था द्वारा कवर किए गए इन मूलभूत मामलों की अच्छी जानकारी है। आखिरकार, जब यीशु आए तो तोरह 1300 साल पुराना हो चुका था। यह अभी भी यहूदी लोगों की जीवनशैली का आधार था। यीशु ने दशमांश की **व्याख्या** इसलिए नहीं की क्योंकि इसे समझाने की कोई ज़रूरत नहीं थी; यह आम ज्ञान था। उन्होंने दशमांश की आज्ञा इसलिए भी नहीं दी क्योंकि इसकी कोई ज़रूरत नहीं थी; इसकी आवश्यकता पहले से ही स्थापित और स्वीकृत थी। हर यहूदी जानता था कि दशमांश का क्या मतलब है, और देने के कई रूपों को समझता था, और यह भी कि देने की प्रणाली कैसे काम करती है, और इसका उद्देश्य क्या है, और परमेश्वर के लोगों के रूप में उनसे क्या अपेक्षा की जाती है। वैसे यीशु ने यह भी नहीं समझाया कि जीवित रहने के लिए साँस लेना और छोड़ना ज़रूरी है; न ही उन्होंने यह समझाया

कि "व्यवस्था" शब्द का क्या मतलब है; हर कोई जानता था कि इसका क्या मतलब है। इसका मतलब तोरह था। जब मैं आपसे बात करता हूँ और "बाइबल" शब्द का इस्तेमाल करता हूँ तो मैं हर हफ़्ते पहले रुककर यह नहीं बताता कि बाइबल क्या है। मैं मानता हूँ कि चूँकि आप यहाँ हैं इसलिए आप पहले से ही जानते हैं।

अगली बार जब हम मिलेंगे तो हम लैव्यव्यवस्था 27 का अध्ययन करेंगे और इस्राएल के याजकों की पुस्तक का अपना अध्ययन पूरा करेंगे। उसके अगले सप्ताह हम गिनती की बहुत ही रोचक पुस्तक शुरू करेंगे।